मेरे परिवार के सभी लोगों की चहेती पत्रिका थी ।

- बहुत हैरानी हुई और बहुत खुशी भी आप डाक्टर हैं और साहित्य से इतना लगाव ?

- हां साहित्य में बहुत रुचि है, पढ़ना मेरा शौक है किताबी कीड़ा भी कह सकती हैं। ये एक लुप्तप्राय प्रजाति हो गई है ,लोग अब किताबें पढ़ने के लिये जरा भी समय नहीं निकालते हैं ।

अच्छा, हमारा तो घर है जबलपुर में, आप वहां कैसे जा रहे हैं ? विदेशी दिखने वाले उन सज्जन ने कहा अरे मेरा तो जन्म ही वहां हुआ है, नाल गड़ी है मेरी नर्मदा घाटी में, बंधा हूं कितनी भी दूर रहूं खिंचकर आऊंगा। रेल की तेज गति अच्छी लग रही थी, रिश्तेदारों को पहुंचाने आये सभी अतिरिक्त लोगों से खाली हो जाने के कारण कोच में सभी लोग चैन की सांस ले रहे थे। बहुत से लोग लेटे थे, कुछ गपशप का आनन्द ले रहे थे। मेहताब बोली बहुत ही अच्छा लग रहा है, यह ट्रेन लगातार यूँ ही भागती रहे, हम बस यूं ही लेटे रहें। डा. नागपाल हंसे, किताब दिखाकर बोले इसे पढ़िये इसके लिये तो आप दोनों मायूस हो गईं थीं। अमृता बोली अभी शाम के 6 बजे हैं, सुबह तक हम दोनों इसे पूरा पढ़ डालेंगे। मेहताब बोली- सर ! अगले स्टेशन पर मैं दौड़कर जाउंगी और गर्मागर्म चाय लेकर आउंगी; तब तक मैं आपका इंटरव्यू ले सकती हूं?

मेरा .....! वो क्यों ?

-सर ! मैं एक लम्बा शोधपरक आलेख लिख रही हूं....एक एन.आर.आई. को कौन सी बातें विदेश खींचकर ले जाती हैं, और कैसा लगता है उन्हें यहां वापिस आकर; जाहिर है कनाडा बहुत साफ, तकनीकी सुविधाओं से लैस, बहुत आरामदायक होगा और पैसा का जिक्र करना ही व्यर्थ है । मैं तो आपका पीछा नहीं छोड़ने वाली, आप दस साल बाद अपने देश और अपनी जन्मस्थली पर वापिस आये हैं, उत्सुक हूं आपकी प्रतिक्रियाओं के लिये।

अकेला ही आया हूं। दो बड़ी बहनें हैं मेरी नागपुर में उनसे मिलने भी जाऊंगा। दो बेटियां हैं, हावर्ड यूनि. में पढ़ती हैं। पत्नी भी अच्छी है, बहुत सुखी हूं। लेकिन देश बहुत याद आता है। जब आना चाहता हूं वो लोग कहती हैं -क्या काम है ? इस बार तो मैंने उन्हें पहले से कुछ बताया ही नहीं था।

- तो अब आप जबलपुर जा रहे हैं

- बिल्कुल ठीक। मेरा अपना घर है वहां, मेरे रिश्तेदार हैं, दोस्त, मेरे पड़ोसी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

-लेकिन जबलपुर गन्दा है, पूरे नगर में हर समय उफनते चौड़े गटर, पग पग पर कचरे के ढेर, चीखते, धुंआ उगलते टेम्पो।

डा.नागपाल बोले अरे तुमने देखा ही क्या होगा, अभी आई हो दुनिया में। हम जानते हैं क्या है ,जबलपुर। कितना शुद्ध वातावरण, खूब घने जंगल। जंगल में पहाड़ियां। पहाड़ों पर बड़े ऊंचे ऊंचे घने वृक्ष। गहन गम्भीर, अपने में खोई हुई सी बहती, और कभी कभी गर्जन करती नर्मदा, संगमरमर की घाटियां और नीले आसमान से टिक कर बैठे पहाड़।

-आपको जबलपुर अच्छा लगता था ?

- अच्छा ...! अरे कोई तुलना नहीं उस स्थान की, उस समय की और हमारी उस जिन्दगी की। क्या सुबह होती थी, चार बजे हम लोग घण्टा भर पढ़ाई के बाद, छूटकर भागते थे.....दौड़ने कसरत करने, तैरने। उन दिनों गुप्तेश्वर शक्तिनगर कॉलोनियां नहीं थीं, बस दो चार घर थे। बाकी दूर-दूर तक सघन वन, पतली पगडंडी बडे विकट झाड़झंकार, अनेक प्रकार के पशु पक्षी। इसके बाद वहां बरगद नीम पीपल अमलतास सागौन साल टीक आम जामुन के सतर्क सिपाही हम बच्चों पर नजर रखते थे, हम सभी बच्चे सहज रूप से यही मानते थे कि ये सब कुछ सुनते और समझते हैं । हमारा झुण्ड कभी सीधे नहीं दौड़ता था- कभी सरपट, कभी कूद-कूद कर, कभी छलांगें मारते हुए, रास्ते में पड़ने वाली चट्टानों पर चढ़ते-उतरते, शाखों से झूलकर दूसरे टीले पर कूदे, बहुत मजा आता था, पेड़ भी हंसते थे, कोई कुछ पूछता नहीं था, हम क्यों दौड़ रहे हैं, कहां भाग रहे हैं। बस एक ने राह पकड़ी, बाकी सब पन्द्रह का झुण्ड उसके पीछे। भूख की परवाह नहीं थी। ठंड में पेड़ अमरूद सीताफल, बेर, तेन्दूफलों से लदे रहते थे; गर्मियों में जामुन आम वर्ष भर फलने वाला अमरूद इतना होता था कि स्वयं भरपेट खाते और बांटने को भी ले जाते थे। टक्कर रहती थी हमारी सिर्फ बन्दरों से। बन्दरों को हमसे जाने क्या बैर था, जिस पेड़ पर हम जाकर आम तोड़ें वहीं पहुंच जाएं। वो दांत, दिखाते हम डंडा। धीरे धीरे दोस्ती हो गई, फिर तो एक ही पेड़ पर बंदर और हम चढ़कर अलग-अलग डाली से फल खाते थे।

शक्तिनगर तरफ कम ही जाते थे हम लोग, वहां जंगली जानवरों का राज्य था एक गोल चक्कर काटकर, फलों सहित हम सब एक सांस में मदनमहल की पहाड़ी पर चढ़ते थे। इतने विकट झाड़ झंखार कि हरियाली और झरे पत्तों के ऊंचे ढेर में सीढ़ियां छुपी रहती थीं। बन्दरों और हमारे झुण्ड को सीढ़ियों की दरकार नहीं थी। कुछ लोग उसे गलती से रानी दुर्गावती की चौकी कहते हैं। गोंडराजा मदनसिंह ने एक पहाड़ी पर मदनमहल बनवाया था। दो अनगढ़ चट्टानों पर बिना नींव डाले यह भी जैसे प्रकृति ने स्वयं निर्मित किया हो ऐसा महल है। हमारी टोली सुबह सुबह धमाल मचाते हुए दौड़ती थी, वहां लोगों का आना जाना बहुत ही कम था, कुछेक साधु संन्यासी मिल जाते थे। दो चार झोपड़े, पतझड़ में झरे पत्तों की नदी आदि से अन्त तक मिलती थी। बरसात में घुटनों तक ऊंचा पानी जाने कहां से आता था, जाने कहां जाता था। बन्दरों की बहुतायत थी, लोमड़ी, लड़ैया, सांभर, हिरण, कबरबिज्जू भी खूब थे।

- डर नहीं लगता था ?

हंसते हुए- एक तो हम मर्द, ऊपर से उमर तेरह - चौदह बरस, इस उम्र में डर नहीं लगता। उस उजाड़महल के सबसे ऊपरी खण्ड में पहुंचकर, हमें लगता हम अन्तरिक्ष में हैं, झरोंखों से दूर दूर तक रहस्यमयी शान्ति को अनुभव करते हुए पाकड़, छेवला के चौड़े पत्तों को बिछाकर लेट जाते थे। थकान के बाद का वह विश्राम ऐसा अद्भुत आनन्द मिलता था उसे यादकर आज भी रोमांच हो आता है। कितना सुख था, वही तो स्वर्ग था, वहीं तो स्वर्ग था।

अमृता और मेहताब सम्मोहित होकर अनुभव करती हुई सुन रही थीं। डा.सा.डूबे हुए थे उन दिनों की स्मृति में।

-उजाला फैल चुका होता था तब तक हम वहां से उतरकर विशालकाय चट्टानों पर चढ़ते थे। एक चट्टान के उपर दूसरी चट्टान संतुलन बनाये हुए टिकी हैं, उनके